में लगाने से वह भी कृष्णभावनाभावित कर्म बन जायगा। भक्त की दृष्टि में व्यापार के स्वामी श्रीकृष्ण हैं। अतः लाभांश का उपभोग भी वे ही करें। इस प्रकार प्रत्येक व्यापारी अपने धन को श्रीकृष्ण के प्रति अर्पण कर सकता है। यह श्रीकृष्ण का सेवाकार्य है। निजेन्द्रियतृप्ति के लिये भवन बनाने के स्थान पर वह श्रीकृष्ण के लिये एक सुन्दर मन्दिर बनाकर श्रीकृष्ण-मूर्ति को स्थापित कर शास्त्र-विधि से उनकी सेवा की व्यवस्था कर सकता है। यह सब **कृष्णकर्म** है। कर्मफल में अनासक्त रहकर उसे श्रीकृष्ण को समर्पित कर देना चाहिये। श्रीकृष्ण को अर्पित नैवेद्य को प्रसाद के रूप में ग्रहण करे। यदि मन्दिर-निर्माण की सामर्थ्य न हो तो श्रीकृष्ण के मन्दिर का मार्जन ही करे। यह भी **कृष्णकर्म** है। पुष्पवाटिका लगाये। उपलब्ध भूमि पर पुष्प लगाकर उनसे श्रीकृष्ण का श्रृंगार करे। तुलसी-कानन लगाना अत्यन्त आवश्यक है; स्वयं श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में इसका विधान किया है। श्रीकृष्ण चाहते हैं कि भक्तिभाव से उन्हें पत्र-पुष्प अथवा केवल जल का ही अर्पण किया जाय। वे इतने से ही प्रसन्न हो जाते हैं। **पत्रपुष्प** से विशेषतः तुलसी का निर्देश है। अतएव तुलसी लगाकर उसका अभिसिंचन करे। इस प्रकार परम दरिद्री भी कृष्णसेवा कर सकता है। **कृष्णकर्म** करने के ये कुछ उदाहरण हैं।

मत्परमः शब्द उस मनुष्य का वाचक है, जो परमधाम में श्रीकृष्ण के संग की प्राप्ति को जीवन की परम सिद्धि मानता है। चन्द्र, सूर्य आदि उच्च लोकों की तो बात ही क्या, ऐसा व्यक्ति तो इस ब्रह्माण्ड के परमोच्च लोक—ब्रह्मलोक को भी नहीं जाना चाहता। इसके लिए उसमें कोई आकर्षण नहीं होता। उसे तो बस परव्योम गमन की स्पृहा लगी रहती है। परव्योम में भी उसे देदीप्यमान ब्रह्मज्योति में विलीन होने से सन्तोष नहीं होता। वह केवल श्रीकृष्ण के गोलोक वृन्दावन नामक परमधाम में प्रवेश करना चाहता है। उस परमलोक का पूर्ण तत्त्वज्ञान हो जाने पर फिर किसी अन्य लोक में रमणीय बुद्धि नहीं रह सकती। जैसा **मद्भक्त** शब्द से स्पष्ट है, वह अनन्य भाव से भक्तियोग में पूर्णरूप से मग्न रहता है। विशेष रूप से वह श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—भक्ति के इन नौ साधनों के परायण रहता है। मनुष्यमात्र यथाशक्ति भक्ति के इन नौ अंगों का, आठ का, सात का अथवा एक ही अंग का आचरण करे। ऐसा करने से जीवन अवश्य सार्थक एवं कृतार्थ हो जायगा।

संगवर्जितः पद अति महत्त्वपूर्ण है। कृष्ण-विमुखों के संग को बिल्कुल त्याग देना चाहिए। केवल अनीश्वरवादी ही श्रीकृष्ण से विमुख नहीं हैं, सकाम कर्म और मनोधर्म के परायण रहने वाले भी इसी कोटि में आते हैं। **भक्तिरसामृतसिन्धु** में शुद्धभक्ति का यह विवरण है: **अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतं आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।** इस श्लोक में श्रील रूप गोस्वामिचरण ने निश्चित रूप से कहा है कि शुद्ध-अनन्य भक्ति करने के लिये सब प्रकार के सांसारिक विकारों से मुक्त होना आवश्यक है। शुद्धभक्ति के अभिलाषी को सकामकर्म और